6595

मार्च १९८४
वर्ष ७ : अंक ११

तिरथर

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON Telephone : 22-4110 22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक ११

मार्च १९८४

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७०००००७

सूची

जैन पत्र साहित्य एवं विनती व विज्ञप्ति पत्र ३२५

प्रसन्नचन्द्र ३३२

बदलना ३३५

जैन पुस्तकालय के विभागीकरण का एक नक्शा ३३६

मध्य भारत का जैन पुरातत्व ३३८

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३४३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३५१

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि के (१९५६) ८ नं० धारा के अनुसार प्रदत्त विवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
स्वत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, गणेश ललवानी, घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है ।

गणेश ललवानी
प्रकाशक का हस्ताक्षर

१५-३-८४

जैन पत्र साहित्य एवं विनती व विज्ञप्ति पत्र

चिट्ठी-पत्री बहुत प्राचीन काल से ही लिखी जा रही है। पहले ताड़पत्र पर लिखी जाती थी बाद में कागज पर। राज्यादेश ताम्रपट पर लिखकर भेजे जाते थे। राजसाही के पहाड़पुर से प्राप्त एक गुप्तकालीन ताम्रपट (ई० ४७८-७९) में वटगोहाली स्थित जैन विहार के एक ब्राह्मण-दम्पति द्वारा प्रदत्त अनुदान का उल्लेख है। इसे यदि हम पत्र न भी माने (जब कि न मानने का कोई कारण नहीं है) फिर भी जैनियों में प्राप्त प्राचीनतम पत्र का जो निदर्शन मिलता है वह ईसा की बारहवीं सदी का है। यह पत्र एक हस्तलिखित ग्रन्थ के पुट्ठे में चिपकाया हुआ था। पत्र खण्डित है एवं पालनपुर की साध्वियों द्वारा लिखित है। वर्तमान में यह बीकानेर के अगरचंद-भँवरलाल नाहटा संग्रहालय में सुरक्षित है।

पत्र का उद्देश्य होता है संवादों का आदान-प्रदान। किन्तु जब यह आदान-प्रदान केवल तथ्यधर्मी न होकर रसधर्मी होता है तब वह साहित्य की पर्याय में आ जाता है। जैसे कि Cowper या रवीन्द्रनाथ के पत्र-साहित्य। ऐसा साहित्य जैनियों में भी लिखा गया है। इन्हें विनती या विज्ञप्ति पत्र कहते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व 'लेख-पद्धति' में प्राप्त दो एक पत्रों के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। 'लेख पद्धति' गुजरात के पाटन शहर में ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में संकलित हुयी थी जिसमें विभिन्न समय के प्राचीन पत्रों का कुछ निदर्शन है। प्रथम पत्र है चाणक्य का। चाणक्य जैन थे ऐसा जैन लोग मानते हैं और चन्द्रगुप्त मौर्य जैन थे यह तो ऐतिहासिकों का भी कहना है। यह पत्र चाणक्य ने ही लिखा था यह तो मैं नहीं कहता किन्तु ईसा की पाँचवीं सदी के विशाखदत्त रचित नाटक 'मुद्रा राक्षस' में चाणक्य द्वारा लिखित रूप में यह पत्र मिलता है।

स्वस्ति यथास्थाने कुतोऽपि कोऽपि कमपि पुरूष विशेषमवगमयति। अस्मत् प्रतिपक्षं निराकृत्य दर्शिता सत्यवता सत्यवादिता आदि-आदि।

इसी भांति ईसा की ७ वीं सदी में क्षेमेन्द्र की रचना में अशोक-पत्नी तिष्यरक्षिता द्वारा तक्षशिला के शासक कुंजर कर्ण को लिखित पत्र व कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' में पुष्यमित्र कर्तृक अग्निमित्र को लिखित पत्रों का उल्लेख है। 'लेख पद्धति' के एक और पत्र का मैं यहाँ उल्लेख करना चाहता हूँ।

वह है दासी पत्र विधि (ई० १२३१)। इसमें क्रीतदासी के दुर्भाग्यमय जीवन का वर्णन है।

अतः परमनया दास्या व्यवहरकगृहे खंडन पेषण गृह लिम्पन संमार्जनेन्धनानयन पानीयोद्वहनादिकं मूत्र पुरिषोत् सर्गादिकं महिषी गोअजादोहनादिक दधिविलोड़नं तथा क्षेत्र खलके तक्रानयनं चारि आनयनादिकं निन्दन कर्तनादिकं क्षेत्र कर्म अन्यदपि गृह कर्म सर्वमकुटिलबुद्धय्या करणीयम् ।....

इस पत्र में यह भी कहा गया है कि क्रीतदासी प्रताड़ित होकर कूपपतनादि द्वारा आत्महत्या करती है तो वह गधी, कुक्कुरी या चांडालीन होकर जन्मती है। गृह स्वामी तो केवल गंगास्नान के द्वारा ही पाप विमुक्त हो जाते हैं आदि-आदि।

वररूचि के 'पत्र कौमुदी' में किस प्रकार पत्र लिखना होगा, किस प्रकार उसे चित्रित करना होगा, पत्र की आकृति क्या होगी, किस प्रकार पत्र मोड़ना होगा, किस प्रकार पत्र भेजना होगा आदि विषयों की आलोचना है।

राजपत्रं नयेन्मूर्ध्नि ललाटे पात्र मन्त्रिणाम।
गुरुपत्रं नयेन्मूर्ध्नि ब्राह्मणानां तथैव च ॥

अर्थात् राजपत्र सिर पर रख कर ले जाना होगा। मन्त्री आदि के पत्र ललाट पर, गुरु व ब्राह्मण के पत्र भी सिर पर रखकर ले जाना होगा, इसी भांति ले जाने होंगे यति, संन्यासी, मालिक के पत्र भी। योद्धा या वीर के पत्र कण्ठ में धारण कर ले जाने होंगे। आज तो यह सब अतिशयोक्ति-सा प्रतीत होता है। किन्तु सम्माननीय को सम्मान देने की बात हमें स्मरण रखनी होगी।

अब मैं जैनियों के विनती व विज्ञप्ति पत्र के विषय पर आ रहा हूँ। विनती पत्र गृही शिष्य या श्रावक एवं विज्ञप्ति पत्र श्रमण शिष्य या साधु द्वारा लिखित आचार्य को प्रेषित किये जाते थे।

पर्व पर्युषण जैनियों का एक विशिष्ट आध्यात्मिक पर्व है। चातुर्मास (वर्षा के चार महीने) के भाद्र कृष्णा द्वादशी या त्रयोदशी से आरम्भ होकर भाद्र शुक्ला चतुर्थी या पंचमी को समाप्त होता है। यह समय धर्मध्यान का है। प्रत्येक जैन यह चाहता है कि यह उत्सव उनके आचार्य या गुरु के सान्निध्य में हो। एक ही आचार्य के शिष्य विभिन्न स्थानों में निवास करते हैं। वे जब आचार्य को अपने यहाँ आकर चातुर्मास व

पर्यूषण पर्व पालन करने के लिए जो पत्र देते हैं उसे विनती पत्र कहा जाता है। इन विनती पत्रों को प्राप्त करने के पश्चात् ही आचार्य यह निश्चित करते हैं कि पर्यूषण पर्व का उद्यापन कहाँ करेंगे। जहाँ वे खुद नहीं जा सकते वहाँ अपने श्रमण शिष्यों को भेज देते हैं। श्रमण शिष्य जहाँ भी जाते हैं वहाँ के पर्यूषण पर्व एवं चातुर्मास के धर्म ध्यान का जो विवरण आचार्य को लिखकर भेजते हैं उसे विज्ञप्ति पत्र कहते हैं। यह विनती या विज्ञप्ति पत्र जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय का एक वैशिष्ट्य है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इसका प्रचलन नहीं है।

विनती या विज्ञप्ति पत्र भेजने का रिवाज भी बहुत प्राचीन है। वर्तमान प्राप्त विनती या विज्ञप्ति पत्रों में जो सबसे पुराना है वह पाटन से श्री जिनोदय सूरि द्वारा लिखित अयोध्या स्थित लोकहिताचार्य के पास भेजा गया था। यह विक्रम सम्वत् १४२१ या ईसा की १३७५ का है। इसका परवर्त्ती विज्ञप्ति पत्र विक्रम सम्वत् १४६६ या ईसा की १४१० का है। यह विज्ञप्ति पत्र देवसुन्दर सूरि द्वारा लिखित है। यह पूर्णांग नहीं खण्डित है। तीसरा विज्ञप्ति पत्र सम्वत् १४८४ या ईसा की १४२८ का है। यह उपाध्याय जयसागर गणि द्वारा खरतरगच्छाचार्य जिनभद्रसूरि को लिखा गया था। इसमें सिन्ध के मालिक वाहनपुर से नगरकोट कांगड़ा तक तीर्थयात्रा का विशद् व विद्वतापूर्ण विवरण है। (मुनि जिन विजयजी सम्पादित 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' द्रष्टव्य) ये तीनों १५ वीं सदी के विज्ञप्ति पत्र हैं। १६ वीं सदी के विज्ञप्ति पत्र विशेष नहीं मिले हैं।

१७ वीं सदी के विज्ञप्ति पत्र का खंडित अंश (ई० १६०४-१२) बीकानेर के नाहटा संग्रहालय में सुरक्षित है। यह विज्ञप्ति पत्र गद्य एवं पद्य में लिखित एवं चित्रित है। यह बीकानेर से जैसलमेर स्थित जिन माणिक्य सूरि को लिखा गया है। इसके पश्चात् जो विनती पत्र या विज्ञप्ति पत्र प्राप्त हुए हैं वे संख्या में बहुल व विधा में विविध प्रकार के हैं। कोई दूत-काव्य सा है तो कोई खण्ड-काव्य सा। कोई पादपूर्त्ति काव्य के रूप में रचित है। और यह धारा अठारहवीं सदी तक चलती रही। भाषा में संस्कृत के स्थान पर स्थानीय भाषा या दोनों का व्यवहार हुआ है। ये गद्य व पद्य के अतिरिक्त १७ वीं सदी से १९ वीं सदी तक गजल में भी लिखित पाए जाते हैं। नगर वर्णन में तो गजल का बहुत व्यवहार किया गया है।

इन विनती एवं विज्ञप्ति पत्रों को चित्रित करने की रीति भी १७ वीं सदी से आरम्भ हो गयी थी। चित्रित विज्ञप्ति पत्रों में तपागच्छीय आचार्य विजय

सेन सूरि को आगरा के संघ द्वारा प्रेरित विनती पत्र विशेष उल्लेखनीय है। कारण इसे एक ऐतिहासिक दस्तावेज भी कहा जा सकता है। बारह सूबों में प्राणीहत्या निषेध कर सम्राट जहाँगीर ने जो फरमान जारी किया था और राजा रामदास ने जिसे लिखा था उसका चित्रित रूप शाही चित्रकार शालिवाहन की कलम से इसमें उतारा गया है। प्रत्येक चित्र के नीचे जो विवरण है वह तत्कालीन भूगोल, राज्यव्यवस्था सामाजिक विविध ज्ञातव्य तथ्य को उपस्थित करता है। आगरा के जहांगीर दरबार का चित्र भी इसमें अंकित है। अन्त में चण्डु द्वारा निर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए आचार्यश्री को इसके द्वारा निमन्त्रण भेजा गया है।

इस शताब्दी में इस भांति के बहुत से चित्रित विनती या विज्ञप्ति पत्र रचित हुए हैं। एक मात्र अठारहवीं शताब्दी के ही इस प्रकार के ५० से भी अधिक सचित्र विनती पत्र या विज्ञप्ति पत्र के सन्धान मिले हैं जिसमें कुछ नष्ट हुए हैं, कुछ व्यक्तिगत संग्रहों में हैं तो कुछ ज्ञान भण्डारों में रक्षित हैं। इनमें १२ विज्ञप्ति पत्रों का विवरण बहुत वर्ष पूर्व बड़ोदा गायकवाड़ के राज्याभिषेक स्मारक ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में डा० हीरानन्द शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर 'Ancient Vijnapti Patras' नाम से सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ था। सिंघी जैन ग्रन्थ माला में (ग्रन्थ संख्या ५१) मुनि जिन विजय जी द्वारा सम्पादित होकर जो 'विज्ञप्ति लेख संग्रह' ईसा की १९६० में प्रकाशित हुआ है उसमें २७ विज्ञप्ति पत्र है। उपरोक्त श्री जिनोदय सूरि लिखित विज्ञप्ति महालेख व महोपाध्याय जयसागर लिखित विज्ञप्ति त्रिवेणी इस ग्रन्थ में संकलित हुयी है।

विनती या विज्ञप्ति पत्र साधारणतः मोटे कागज पर लिखे जाते थे। इसकी चौड़ाई तो १० या १२ इंच होती थी किन्तु लम्बाई बहुत अधिक होती थी। यहाँ तक कि १०८ हाथ लम्बे विज्ञप्ति पत्र भी देखे गए हैं। विज्ञप्ति पत्र के प्रारम्भ में अष्ट मंगल तत्पश्चात् तीर्थंकरों की माताएँ जो चौदह स्वप्न देखती है वे चित्रित रहते हैं, एवं इसके बाद तीर्थंकर या आचार्यों के स्तवनादि रहते हैं। बाद में आती है विनती या विज्ञप्ति। यहाँ तक कि जिस स्थान से विनती या विज्ञप्ति भेजी जाती थी उस स्थान का चित्र सहित विवरण रहता है। संघ नेताओं के नाम आचार्य एवं आचार्य शिष्यों के नाम तत्कालीन उल्लेखनीय घटनाओं का विवरण आदि भी रहता है। इस भांति इन विनती या विज्ञप्ति पत्रों का भौगोलिक सांस्कृतिक राजनैतिक इतिहास रचना में

अपरिसीम मूल्य है इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। पर खेद है हमारी दृ तक इस ओर नहीं गयी है। हम आज यूरोपियन शिल्पियों द्वारा अंकित प्राचीन कलकत्ते के चित्रों की चर्चा करते हैं किन्तु उदयपुर, जयपुर, आगरा आदि के जो प्राचीन चित्र विनती या विज्ञप्ति पत्रों में चित्रित हुए है उन्हें हममें से कितने जानते हैं?

विनती या विज्ञप्ति पत्र, दूत काव्य, खण्ड काव्य, समस्यापूर्त्ति काव्य रूप में लिखे गए यह तो मैं पूर्व ही कह आया हूँ। उदाहरणतः यहाँ दो एक का उल्लेख कर रहा हूँ। यथा विनय विजय गणि का 'इन्दु दूत'—

विनय विजय गणि के गुरु विजयप्रभसूरि उस समय सूरत में चातुर्मास कर रहे थे। इन्हीं के आदेश से वे जोधपुर चातुर्मास करने आए थे। पर्यूषण पर्वाराधना के पश्चात् भादवाँ सुदी पूर्णिमा की रात्रि में पूर्ण चन्द्र को देखकर विनय विजय गणि के मन में ऐसी भावना जाग्रत हुई कि चन्द्र द्वारा सांवत्सरिक क्षमापना एवं अभिवादन सूरत स्थित अपने गुरु को प्रेषित करूँ। चन्द्रमा को दूत के रूप में नियुक्त करने के पूर्व वे चन्द्रमा की प्रशंसा करते हैं और जोधपुर से सूरत तक के पथ का वर्णन करते के यथार्थ्य के विषय में मैं यहाँ Ancient Vijnaptipatras से हीरानन्द शास्त्री का मन्तव्य उद्धृत करता हूँ :

"The route described agrees with the present Railway route as is shown by the mention of the chief places lying on it. The description of Jodhpur, Jalore, Sirohi, Mount Abu with its famous marble temples of Vastupala, of the Jaina images at Achalgarh or Sidhpur, Ahmedabad, Baroda, Broach and Surat as given in it is indeed vivid."

मेघदूत समस्या लेख और चेतोदूत इस प्रकार के विज्ञप्तिपत्र हैं। इनके विषय में डा० हीरानन्द शास्त्री लिखते हैं :

"They furnish interesting accounts of several places like Elora, Port Diu etc. which fall on the way the messenger of these solicitations is asked to follow. They are splendid pieces of poetry"

कालिदास के मेघदूत से समस्या पूर्ति का एक दृष्टान्त दे रहा हूँ :

मेघदूत समस्या लेख में—

तस्यां पुर्यां मुनिगण गुरोर्विप्रयोगी स योगी
नीत्वा मासान् कतिचिदचिराद्वाचिकं नेतुकामः।
भाद्रे पंचम्युदय दिवसे मेघ माश्लिष्ट सौधं
वप्र क्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयं ददर्श॥

श्वेतोदूत में—

संयोगार्थी गुरुपद भुवोवल्लभायाः प्रसत्तेः
शिष्य कश्चित् समदमिह दुर्वारणं श्वैराचारम्।
चिन्तायोगात् सुचिरमचल स्वात्मनिष्ठं मनः स्वं
वप्र क्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयं ददर्श॥

मेघदूत मे—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदवलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कणक वलय भ्रंशारिक्त प्रकोष्ठः
आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं
वप्र क्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयं ददर्श॥

मेघदूत की समस्या पूर्त्ति रूप में जो विज्ञप्ति पत्र दूत या खण्ड काव्य रूप में रचित है अनुपम है उनमें काव्य माधुर्य! इन सब पदों के रचनाकार जैन श्रमण थे सोचकर हम विस्मित हो जाते हैं। विनती या विज्ञप्ति पत्र रूप में जो साहित्य है वह एक मात्र जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय का ही है। विश्व साहित्य में इसके अनुरूप साहित्य कहीं है यह ज्ञात नहीं।

विनती या विज्ञप्ति पत्रों के अतिरिक्त श्रावक व श्रमणों द्वारा परस्पर दिए गए पत्र या आचार्य एवं श्री पूज्यों को प्रेषित बहुत से पत्र हैं। ऐसे पत्र विभिन्न व्यक्तियों के संग्रह या भण्डारों में हैं। यदि इन्हें संकलित कर मुद्रित किया जाए तो प्राचीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा। एक एक सौ वर्ष पुराना इसी प्रकार का पत्र श्री भँवरलाल जी नाहटा के संग्रह में है। वह पत्र कलकत्ते से खाजूराम मोदी ने जिन मुक्ति सूरिजी को लिखा था। इस पत्र में सम्मेत शिखर पर पूजन के चढ़ावे पर पालगंज का जमींदार किस प्रकार हस्त-क्षेप करता है, एवं भारत सरकार की फौज पहाड़ पर कैम्प डालकर जो सब अनाचार कर रही है उसके निराकरण के लिए उन्होंने व अन्यों ने जो प्रयास किए एवं उस समय में मुखसुदाबाद (मुर्शिदाबाद) के जैनियों ने पालगंज के जमीन्दार के साथ जिस प्रकार का समझौता किया जो कि उनकी दृष्टि से

अनुचित था—आदि विषयों पर प्रकाश डालते हुए उनका निर्देशन माँगा है। इस पत्र के साथ यति मोहनलालजी का पत्र भी है। यह पत्र सम्मेत शिखर की इतिहास रचना का एक मूल्यवान दस्तावेज है। इसी भांति के कितने ही मुसलमान सम्राटों के फरमान राजाओं के आज्ञा पत्र साधु यति एवं श्री पूज्यों की चिट्ठी-पत्री आदि हैं जिनका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है।

वर्तमान काल में भी जैन साधु-सन्त या पंडितों ने परस्पर जिन पत्रों का आदान-प्रदान किया उनमें कुछ का संकलन हुआ है। इनमें सर्व प्रथम उल्लेखनीय है श्रीमद् राजचन्द्र की पत्रावली। श्रीमद राजचन्द्र ने यद्यपि गृहत्याग नहीं किया था फिर भी उनका जीवन एक साधक का जीवन था जो कि साधु जीवन से भी कठोर था। वे आत्म ज्ञानी थे। महात्मा गान्धी पर आपका अपरिसीम प्रभाव था। गान्धीजी के मन में जब कोई प्रश्न उठता तो वे आपके पास आकर उसका समाधान करते थे या पत्र लिखते। उनके पत्र राजचन्द्र ग्रन्थावली में प्राप्त होते हैं। मुनि सहजानन्द जी की पत्रावली भी ग्रन्थाकार में प्राप्य है। यथा सहजानन्द-विलास, पत्र सुधा, सहजानन्द पत्रावली। इन ग्रन्थों में भक्तों द्वारा जिज्ञासित प्रश्नों के प्रत्युत्तर संकलित हैं। पंडितों में पंडित सुखलालजी ने विभिन्न जिज्ञासुओं के पत्रों के जो उत्तर दिए वे भी मुद्रित हैं।

प्रसन्नचन्द्र

भगवान महावीर जिस समय गुणशील चैत्य में अवस्थित थे, राजगृह के महाराज श्रेणिक चतुरंगिनी सेना के साथ उनकी पद-वन्दना करने आये।

राह में नगर से बाहर लता-पत्रों से आवृत्त एक स्थान पर पोतनपुर के राजा प्रसन्नचन्द्र को ध्यान करते देखा। राजर्षि के सौम्य एवं शान्त मुख को देखकर श्रेणिक का हृदय अपार श्रद्धा से भर उठा। वे सोचने लगे, राजर्षि की इस तपस्या की तुलना नहीं।

गुणशील चैत्य में महावीर को प्रणाम कर श्रेणिक ने अपना आसन ग्रहण किया। उसके बाद बोले, 'प्रभु! राह में आते समय मैंने ध्यानमग्न प्रसन्नचन्द्र को देखा। राजर्षि जैसी तपस्या तो मैंने बहुत ही कम देखी है। एतदर्थ उनके विषय में एक बात जानने को मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ। जिस समय मैंने उन्हें देखा, यदि उसी समय उनका देहावसान हो जाता तो वे किस लोक को प्राप्त करते?

महावीर ने कहा, 'सप्तम नरक को।'

'सप्तम नरक!'

जितने भी वहाँ उपस्थित थे सभी स्तब्ध-से हो गये। यह कैसी असम्भव बात! इतने महान् तपस्वी के विषय में तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। किन्तु, सर्वदर्शी भगवान महावीर ने जब कहा है तो शंका को स्थान कहाँ!

श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया, 'प्रभु! यदि इस क्षण, अभी उनका देहान्त हो जाता तो?'

महावीर ने कहा, 'षष्ठ नरक।'

श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया, 'यदि इस क्षण?'

महावीर ने जवाब दिया, 'पंचम नरक?'

इसके बाद श्रेणिक प्रश्न करते गये, 'अब? अब? अब···?'

महावीर उत्तर देते गये, 'चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम नरक।'

'और अब?'

'प्रथम देवलोक।'

तत्पश्चात् द्वितीय, तृतीय, पंचम और अन्त में सर्वोच्च देवलोक।

ठीक उसी समय वायु फूलों की भीनी सुवास से सुवासित हो उठी। दूर कहीं आकाश में देव-दुन्दुभि बजने लगी। एक अपूर्व आनन्द के आवेग में समस्त विश्व चंचल हो उठा। अपरिमित आनन्द से राजा श्रेणिक का रोम-रोम पुलकित हो गया। श्रेणिक स्थिर न रह सके। पूछ ही बैठे, 'प्रभु! यह क्या?'

महावीर ने कहा, 'प्रसन्नचन्द्र ने आत्मा पर आए प्रकाश के समस्त आवरणों को इसी क्षण क्षय कर डाला है। वे मुक्त हो गये।'

विस्मय पर विस्मय! कहाँ सप्तम नरक! कहाँ प्रकाश के आवरणों का क्षय!

श्रेणिक बोले, 'कुछ समझ में नहीं आ रहा है प्रभु!'

महावीर ने कहा, 'अभी स्पष्ट किये देता हूँ। सब कुछ समझ जाओगे। तुमने जब प्रथम बार प्रसन्नचन्द्र को देखा था उस समय उनका चित्त भ्रमित था। और उस चित्त विभ्रम का कारण था उनके शिशु पुत्र पर आने वाली विपद, जिसे कि वे तुम्हारे अनुचरों के वितर्क द्वारा जान पाये थे। उस बात को सुनकर उनका ध्यान भंग हो गया था। पोतनपुर जब शत्रुसेना से अवरुद्ध था, राज्य रक्षा जब अनिश्चित थी, तो देश, राज्य एवं शिशु पुत्र के लिये उन्होंने हाथ में अस्त्र धारण कर लिया।'

श्रेणिक बोले, 'भगवन्, ऐसा क्यों हुआ?'

महावीर ने जवाब दिया, 'समस्त प्रश्न एवं समस्त जिज्ञासाओं का निराकरण किये बिना ध्यान नहीं हो सकता। राजर्षि को शिशु-पुत्र एवं राज्य-रक्षा के विषय में जो संशय था उसका समाधान किये बिना ही तो श्रमण दीक्षा लेकर वे ध्यान में अवस्थित हो गये थे। उनकी धारणा थी, किसका संसार! किन्तु वे भूल गये थे कि संसार उनका स्वयं का ही था। इस बात को वे उस दिन नहीं समझ सके थे। अतः इसी एक छोटे-से संशय ने विराट् रूप धारण कर उनको पथ से विचलित कर दिया।'

'तत्पश्चात्?'

'तत्पश्चात् जब उनका अस्त्र टूटकर हाथ से गिर पड़ा और दूसरा अस्त्र वे पा नहीं सके, तब अपने मस्तक के मुकुट को उतार कर ही विपक्षी दल पर आक्रमण करने को तत्पर हुए। मस्तक पर हाथ पड़ते ही उनकी चेतना लौट

आयी। अरे! कहाँ मुकुट? कहाँ शत्रु सैन्य? और कहाँ पोतनपुर? मैं तो भ्रमण हूँ। नगर के बाहर उद्यान में ध्यान कर रहा हूँ।

'अब वे समझ पाये कि स्वयं पर विजय प्राप्त किये बिना बाह्य त्याग की कोई वास्तविक महिमा नहीं है। क्योंकि संसार भी तो अपनी ही विसृष्टि है।

'और यही चेतना उन्हें उच्चतर लोक में ले जाने का कारण बनी जिसकी परिसमाप्ति हुई प्रकाश पर आये हुए समस्त आवरणों के क्षय से।'

बदलना

मुनि चन्द्रप्रभ सागर

प्रतिपल जीवन का परिवर्तन
प्रज्ञा का पल - पल स्थानान्तरण
अदल - बदल
चेतना का दल - बदल
परित्याग पुराना रूप
धारण करते नया स्वरूप,
छोड़ एक दशा को
बदलता है दूसरी दशा में
मनुष्य का स्वभाव
पहन मुखौटा
कभी गिरगिटिये की भांति
कभी ऋतुओं की भांति।

जैन पुस्तकालय के विभागीकरण का एक नक्शा

Model Classification of a Jain Library

श्री जोहरीमल पारख

2 J 0—

2 J 1—आगम (Canons)

2 J 1. 1 अंगसूत्र (Main)

2 J 1. 2 अंग बाह्य (Supplementary)

2 J 2—सिद्धान्त व आचार (Doctrines & Ethics)

2 J 2. 1 प्राचीन मान्य ग्रन्थ दिगम्बर आम्नाय (Digambar Classics)

2 J 2. 2 ,, ,, ,, श्वेताम्बर आम्नाय (Svetambar Classics)

2 J 2. 3 अर्वाचीन स्तर ग्रन्थ (Modern Standard Works)

2 J 2. 4 ,, साधारण संकलन, पाठ्य पुस्तकें व लघु पुस्तिकायें (Ordinary Compilations, Text books & Tracts)

2 J 3—धार्मिक क्रिया व भक्ति (Rituals & Hymns)

2 J 3. 1 आवश्यक (Essential Rites)

2 J 3. 2 विधि विधान व व्रत पर्वाख्यान (Prescriptions for Religious Service, Worship Performances & Festivities)

2 J 3. 3 स्तुति, स्तोत्र, स्तवन, सज्झाय, पूजा आदि भक्ति साहित्य (Hymns)

2 J 3. 4 सांप्रदायिक खंडन मंडन (Intra-Secterian Controversies)

2 J 4—इतिहास भूगोल व अन्य वृतान्त (History, Geography & Narratives)

2 J 4. 1 जीवन चरित्र, पुराण व कथानक (Biographies, Legends & Mythsy)

2 J 4. 2 ऐतिहासिक ग्रन्थ (Historical Books)

2 J 4. 3 भूगोल व खगोल (Geography & Cosmology)

2 J 4. 4 अन्य वृतान्त (Other Narratives)

2 J 5—लौकिक विद्यायें (Branches of Worldly Knowledge)

2 J 5. 1 जड़ विज्ञान (Physical & Natural Sciences)

2 J 5. 2 सामाजिक ज्ञान (Social Studies)

2 J 5. 3 ज्योतिष व गणित (Astronomy & Mathematics)

2 J 5. 4 मन्त्र, तन्त्र, निमित्त (Mantra, Tantra, Astrology)

2 J 5. 5 ललित कला (Fine Arts)

2 J 6—भाषा व व्याकरण (Language & Grammar)

2 J 6. 1 व्याकरण (Grammar)

2 J 6. 2 भाषा, छंद, अलंकार व काव्य शास्त्र (Language, Rhetoric & Prosody)

2 J 6. 3 न्याय (Logic)

2 J 7—साहित्यिक ग्रन्थ (Literary works)

2 J 7. 1 गद्य पद्य (Prose & Poetry)

2 J 7. 2 नाटक (Drama)

2 J 7. 3 उपन्यास व कहानियाँ (Fiction & Stories)

2 J 7. 4 अन्य (Others)

2J 8—सामान्य (General)

2 J 8. 1 सूचीपत्र (Bibliographies & Catalogues)

2 J 8. 2 शब्द कोश और विश्वकोश (Dictionaries & Encyclopaedias)

2 J 8. 3 अभिनन्दन/स्मृति ग्रन्थ, विशेषांक एवं स्मारिकायें (Commemoration/Felicitation Volumes, Souvenirs & Special Issues)

2 J 8. 4 पत्र-पत्रिकाओं की जिल्दें (Volumes of Periodicals & Magazines)

2 J 8. 5 प्रतिवेदन, अध्ययन, सर्वेक्षण व अन्य सामान्य संग्रह (Reports, Surveys, Studies & Other Collections)

2 J 9—विविध एवं अवर्गीकृत शेष (Miscellaneous & Unclassified Residuary)

2 J 9. 1 परसामयिक (Religious Books other than Jain)

2 J 9. 2 नैतिक (Ethical ,, ,, ,, ,,)

मध्य भारत का जैन पुरातत्व

श्री परमानन्द जैन, शास्त्री

[पूर्वानुवृत्ति]

ग्वालियर के किले का इतिहास :

जैन साहित्य में वर्तमान ग्वालियर का उल्लेख गोपायुलु, गोपाद्रि, गोपगिरि, गोपाचल और गोपालगढ़ आदि नामों से किया गया है। ग्वालियर की इस प्रसिद्धि का कारण जहाँ उसका पुरातन दुर्ग (किला) है वहाँ भारतीय (हिन्दू, बौद्ध और जैनियों के) पुरातत्व की प्राचीन एवं विपुल सामग्री की उपलब्धि भी है। भारतीय इतिहास में ग्वालियर का स्थान बहुत ही महत्व-पूर्ण है। वहाँ पर प्राचीन अवशेषों की कमी नहीं है। उसके प्रसिद्ध सूबों और किलों में इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। ग्वालियर का यह किला पहाड़ की एक चट्टान पर स्थित है। यह पहाड़ डेढ़ मील लम्बा और ३०० गज चौड़ा है। इसके ऊपर बलुआ पत्थर की चट्टानें हैं। उनकी नुकीली चोटियाँ निकली हुई हैं। जिनसे किले की प्राकृतिक दीवार बन गई है। कहा जाता है कि इसे सूरजसेन नाम के राजा ने बनवाया था। वहाँ 'ग्वालिय' नाम का एक साधु रहता था। जिसने राजा सूरजसेन के कुष्ट रोग को दूर किया था। अतः उसकी स्मृति में ही ग्वालियर नाम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। पर इसमें को सन्देह नहीं कि ग्वालियर के इस किले का अस्तित्व विक्रम की छठी शताब्दी में था, क्योंकि ग्वालियर की पहाड़ी पर स्थित 'मात्र चेता' द्वारा निर्मापित सूर्य मन्दिर के शिलालेख में उक्त दुर्ग का उल्लेख पाया जाता है। दूसरे, किले में स्थित चतुर्भुज मन्दिर के वि० सं० ९३२-३३ के दो शिला वाक्यों में भी उक्त दुर्ग का उल्लेख पाया जाता है। हाँ, शिलालेखों से इस बात का पता जरूर चलता है कि उत्तर भारत के प्रतिहार राजा मिहिर भोज ने जीत कर इसे अपने राज्य कन्नौज शामिल कर लिया था। और उसे विक्रम की ११ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कच्छपघट या कछवाहा वंश के वज्रदाम नाम के राजा ने, जिसका राज्य शासन् १००७ से १०३७ तक रहा है और जो जैन धर्म का श्रद्धालु था, सं० १०३४ में एक जैन मूर्त्ति की प्रतिष्ठा भी करवायी थी। उस मूर्त्ति की पीठ पर जो लेख[१०] अंकित है उससे उसकी जैन

[१०] संवत् १०३४ श्री वज्रदाम महाराजाधिराज वइसाख वदि पाचमि। देखो, जनरल एशियाटिक सोसाइटि आफ बेंगाल, पृ० ४१०-५११।

धर्म में आस्था होना प्रमाणित है। इस वंश के अन्य राजाओं ने जैन धर्म के संरक्षण, प्रचार एवं प्रसार करने में क्या कुछ सहयोग दिया, यह बात अवश्य विचारणीय है और अन्वेषणीय है। कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजा से ग्वालियर को जीतकर उस पर अपना अधिकार कर लिया था। इस वंश के मंगल राज, कीर्तिराज, भुवनपाल, देवपाल, पद्मपाल, सूर्यपाल, महीपाल, भुवनपाल और मधुसूदनादि अन्य राजाओं ने ग्वालियर पर लगभग दो सौ वर्ष तक अपना शासन किया। किन्तु, बाद में पुनः प्रतिहार वंश की द्वितीय शाखा के राजाओं का उस पर अधिकार हो गया था। परन्तु वि० संवत् १२४९ में दिल्ली के शासक अल्तमस ने ग्वालियर पर घेरा डालकर दुर्ग का विनाश किया। उस समय राजपूतों ने अपने शौर्य का परिचय दिया परन्तु मुट्ठी भर राजपूत उस विशाल सेना से कब तक लोहा लेते? आखिर राजपूतों ने अपनी रक्षा के हित युद्ध में मर जाना ही श्रेष्ठ समझा और राजपूतानियों ने 'जौहर' द्वारा अपने सतीत्व का परिचय दिया। वे अग्नि की विशाल ज्वाला में भस्म हो गयीं और राजपूत अपनी वीरता का परिचय देते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। किले पर अल्तमस का अधिकार हो गया।

सन् १३९८ (वि० सं० १४५५) में तैमूरलंग ने भारत पर जब आक्रमण किया, तब अवसर पाकर तोमरवंशी वीर सिंह नाम के एक सरदार ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। और वह उक्त वंश के आधीन सन् १५३६ (वि० संवत् १५९३) तक रहा।

इस क्षत्रिय वंश के अनेक राजाओं ने (सन् १३९८ से १५३६ तक) ग्वालियर पर शासन किया है। उनके नाम वीर सिंह उद्धरण देव, विक्रम देव (वीरमदेव), गणपति देव, डूंगरसिंह, कीर्तिसिंह, कल्याणमल मानसिंह, विक्रम शाह, राम शाह, शालिवाहन और इनके दो पुत्र (श्याम शाह और मित्र सेन[११]) है। लगभग दो सौ वर्ष के इस राज्यकाल में जैन धर्म को फलने-फूलने का अच्छा अवसर मिला है। इन सभी राजाओं की सहानुभूति जैन धर्म, जैन साधुओं और जैनाचार पर रही है। राजा डूंगरसिंह और कीर्तिसिंह की

---

११ यह मित्रसेन शाह जलालुद्दीन के समकालीन थे। इनका वि० सं० १६८८ का एक शिलालेख बंगाल एशियाटिक सोसायटी के जरनल, भा० ८ पृ० ६९५ में रोहतास दुर्ग के कोयैटिय फाटक के ऊपर की परिया पर तोमर मित्रसेन का शिलालेख जिसे कृष्णदेव के पुत्र शिवदेव ने संकलित किया था।

आस्था जैन धर्म पर पूर्ण रूप से रही है। तत्कालीन् विद्वान भट्टारकों का प्रभाव इन पर अंकित रहा है। यद्यपि तोमर वंश के पूर्व भी कछवाह और प्रतिहार वंश के राजाओं के राज्यकाल में भी ग्वालियर और पार्श्ववर्ती इलाकों में जैन धर्म का सूर्य चमक रहा था। परन्तु तोमर वंश के समय धर्म की विशेष अभिवृद्धि हुई। राजा विक्रम सिंह या वीरमदेव के समय जैसवाल वंशी सेठ कुशराज उनके मंत्री थे, जो जैन धर्म के अनुयायी और श्रावक के व्रतों का अनुष्ठान करते थे। इनकी प्रेरणा और भट्टारक गुणकीर्ति के आदेश से पद्मनाभ कायस्थ ने, जो जैन धर्म पर श्रद्धा रखता था, यशोधर चरित की रचना की थी।[१२]

ग्वालियर और उसके आस-पास के जैन पुरातत्व और विद्वान भट्टारकों तथा कवियों की ग्रन्थ रचनाओं का अवलोकन करने से स्पष्ट पता चलता है कि वहाँ जैन धर्म उक्त समय में खूब पल्लवित रहा। ग्वालियर उस समय उसका केन्द्र-स्थल बना हुआ था। वहाँ ३६ जातियों का निवास था पर परस्पर में विरोध नहीं था। जैन जनता अपनी धार्मिक परिणति, उदारता, कर्त्तव्य परायणता, देवगुरु शास्त्र की भक्ति और दान धर्मादि कार्यों में सोत्साह भाग लेती थी। उसी का प्रभाव था कि जैन धर्म और उसकी अनुयायी जनता पर सबका वात्सल्य बना हुआ था। उस समय अनेक जैन राजकीय उच्चपदों पर सेवा कार्य करते थे। जो राज्य के संरक्षण पर सदा दृष्टि रखते थे। वर्त्तमान में भी जैनियों की वहाँ अच्छी संख्या है।

खासकर राजा डूंगरसिंह और कीर्त्तिसिंह के शासन काल में (वि० सं० १४८१ से १५३६ तक) ३३ वर्ष पर्यन्त किले में जैन मूर्त्तियों की खुदाई का कार्य चला है। पिता और पुत्र दोनों ने ही बड़ी आस्था से उसमें सहयोग दिया था। अनेक प्रतिष्ठोत्सव सम्पन्न किए थे। दोनों के राज्यकाल में प्रतिष्ठित मूर्त्तियाँ ग्वालियर में अत्यधिक पायी जाती हैं, जिनमें सं० १४९७ से १५२५ तक के लेख भी अंकित मिलते हैं। ग्रन्थ रचना भी उस समय अधिक हुई है। देवभक्ति के साथ श्रुतभक्ति का भी पर्याप्त प्रचार रहा है। वहाँ के एक सेठ पद्मसिंह ने जहाँ अनेक जिनालयों, मूर्त्तियों का निर्माण एवं प्रतिष्ठोत्सव सम्पन्न कराया था, वह जिनभक्ति से प्रेरित होकर एक लक्ष ग्रन्थ लिखवाकर तत्कालीन जैन साधुओं और जैन मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों को

---

[१२] देखो, यशोधर चरित और पद्मनाथ कायस्थ नामक लेख अनेकान्त, वर्ष १०।

प्रदान किये थे। ऐसा आदि पुराण की सं० १५२१ की एक लिपि प्रशस्ति से जाना जाता है। इन सब कार्यों से उस समय की धार्मिक जनता के आचार विचार का और सामाजिक प्रवृत्तियों का सहज ही परिज्ञान हो जाता है। उस समय के कवि रइधू ने अपने पार्श्व पुराण की आद्यन्त प्रशस्ति में उस समय के जैनियों की सामाजिक और धार्मिक परिणति का सुन्दर चित्रण किया है।

सन् १५३६ के बाद दुर्ग पर इब्राहिम लोदी का अधिकार हो गया। मुसलमानों ने अपने शासन काल में उक्त किले को कैदखाना ही बना कर रखा। पश्चात् दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। जब बाबर उस दुर्ग को देखने के लिए गया, तब उसने उरवाही द्वार के दोनों ओर चट्टानों पर उत्कीर्ण की हुई उन नग्न दिगम्बर जैन मूर्त्तियों के विनाश करने की आज्ञा दे दी।[१३] उसका यह कार्य कितना नृशंस एवं घृणापूर्ण था, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं।

सन् १८११ में दुर्ग पर मराठों का अधिकार हो गया। तब से उन्हीं का शासन रहा और अब स्वतन्त्र भारत में मध्यप्रदेश का शासन चल रहा है।

जैन मन्दिर और मूर्तियां :

किले में कई जगह जैन मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। किला कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है : इस किले में से शहर के लिए एक सड़क जाती है। इस सड़क के किनारे दोनों ओर विशाल चट्टानों पर उत्कीर्ण हुई कुछ जैन मूर्तियाँ अंकित हैं। ये सब मूर्त्तियाँ पाषाणों की कर्कश चट्टानों को खोदकर बनाई गई हैं। किले में हाथी दरवाजा और सास-बहू के मन्दिरों के मध्य में एक जैन मन्दिर है जिसे मुगल शासनकाल में एक मस्जिद के रूप में बदल दिया गया था। खुदाई करने पर नीचे एक कमरा मिला है जिसमें कई नग्न जैन मूर्त्तियाँ हैं और एक लेख भी सन् ११०८ (वि० सं० ११६५) का है। ये मूर्त्तियाँ कायोत्सर्ग तथा पद्मासन दोनों प्रकार की हैं। उत्तर की वेदी में सात फण सहित भगवान् श्री पार्श्वनाथ की सुन्दर पद्मासन मूर्त्ति है। दक्षिण की भींत पर भी पाँच वेदियाँ हैं जिनमें से दो के स्थान रिक्त हैं। जान पड़ता है कि उनकी मूर्त्तियाँ विनष्ट कर दी गई हैं। उत्तर की वेदी में दो नग्न कायोत्सर्ग मूर्त्तियाँ अभी भी मौजूद हैं और मध्य में ६ फुट ८ ईंच लम्बा आसन एक जैन मूर्त्ति का है। दक्षिणी वेदी पर भी दो पद्मासन नग्न मूर्त्तियाँ विराजमान हैं।

---

[१३] देखो बाबर का आत्मचरित।

दुर्ग की उर्वाही द्वार की मूर्त्तियों में भगवान आदिनाथ की मूर्त्ति सबसे विशाल है। उसके पैरों की लम्बाई नौ फुट है और इस तरह पैरों से तीन चार गुणी ऊँची है। मूर्त्ति की कुल ऊँचाई ५७ फीट से कम नहीं है। श्वेताम्बरीय विद्वान् मुनि शील विजय और सौभाग्य विजय ने अपनी-अपनी तीर्थमाला में इस मूर्त्ति का प्रमाण बावन गज बतलाया है।[१४] जो किसी तरह भी सम्भव नहीं है। और बाबर ने अपने आत्म चरित में इस मूर्त्ति को करीब ४० फीट ऊँचा बतलाया है, वह भी ठीक नहीं है। कुछ खण्डित मूर्त्तियों की बाद में सरकार की ओर से मरम्मत करा दी गई है। फिर भी उनमें की अधिकांश मूर्त्तियाँ अखण्डित मौजूद हैं।

[क्रमशः

---

[१४] बावन गज प्रतिमा दीसती, गढ़ ग्वालेरि सदा सोभती ॥३॥—शील विजय तीर्थमाला पृ०, १११।

गढ़ ग्वालेर बावन गज प्रतिमा वंदू ऋषभ रंगरोली जी ॥—सौभाग्य विजय तीर्थमाला, १४-२-पृ०, ६८।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

पुनः दोनों मल्लों ने ताल ठोंकी। उसका ऐसा शब्द हुआ मानो उसी समय पर्वत पर विद्युतपात हुआ हो। खेल ही खेल में पदन्यास करते हुए और कुण्डल को कम्पित करते हुए वे दोनों एक दूसरे के सम्मुख अग्रसर होने लगे। उस समय वे ऐसे लग रहे थे मानों वे धातकी खण्ड से आए हुए छोटे मेरु पर्वत हों जिसके दोनों ओर चन्द्र और सूर्य हैं। बलवान हस्ती जिस प्रकार मदोन्मत्त होकर अपने दाँतों से एक दूसरे के दाँतों पर आघात करता है उसी प्रकार वे भी परस्पर आघात करने लगे। एक क्षण में संयुक्त दूसरे क्षण वियुक्त होते वे दोनों वीर ऐसे लग रहे थे मानों पवन द्वारा प्रेरित दो विराट् महीरूह हों। दुर्दिन में उन्मत्त समुद्र जल की तरह वे क्षण मात्र में उत्पतित और क्षण मात्र में निपतित होते थे। मानों स्नेह से मिल रहे हों इस प्रकार क्रोधावेश से दौड़कर दोनों महाबाहु एक-एक अंग से एक दूसरे को पीस रहे थे और कर्म परवश जीव की तरह युद्ध विज्ञान के वशवर्त्ती होकर कभी नीचे कभी ऊपर आ जा रहे थे। जल में मत्स्य की भाँति इतने वेग से बार-बार ऊपर-नीचे हो रहे थे कि जो उन्हें देख रहे थे वे जान ही नहीं पाते कि कौन नीचे है कौन ऊपर है? वृहद् सर्प की तरह वे एक दूसरे के लिए बन्धन रूप हो रहे थे और चपल बन्दर की तरह उसी क्षण पृथक भी हो जाते थे। बार-बार पृथ्वी पर लोटने के कारण दोनों ही धूलि धूसर हो गए थे देखकर लगता जैसे वे धूलिमद वाले हस्ती हों। संचरमान पर्वत की तरह उनका भार वहन करने में असमर्थ होकर पृथ्वी उनके पदाघात के बहाने मानों आर्तनाद कर रही हो। अन्ततः क्रोधाविष्ट महापराक्रमी बाहुबली ने भरत को उसी प्रकार अपने हाथों में उठा लिया जिस प्रकार शरभ हस्ती को उठा लेता है एवं हाथी जिस प्रकार क्षुद्र जानवर को उठाकर आकाश में उछाल देता है उसी प्रकार भरत को उछाल दिया। कारण बलवानों में भी अधिक बलवानों की उत्पत्ति निरवधिकाल से होती आ रही है। प्रत्यंचा से छूटे तीर की तरह या यन्त्र द्वारा उत्क्षिप्त प्रस्तर की तरह राजा भरत आकाश में बहुत ऊपर चले गए। इन्द्र द्वारा निक्षिप्त वज्र की तरह नीचे की ओर गिरते हुए चक्री को देखकर युद्ध देखने

वाले समस्त खेचर भाग गए एवं दोनों सेनाओं के मध्य हाहाकार मच गया। क्योंकि महापुरुषों के आपद् काल में किसे दुःख नहीं होता ?

उत्क्षिप्त भरत को आकाश में देखकर बाहुबली सोचने लगे—अरे धिक्कार है मेरे बल को, मेरे बाहु को। मुझ जैसे सहसा कार्य करने वाले को धिक्कार है। और ऐसे कार्यों की उपेक्षा करने वाले मन्त्रियों को भी धिक्कार है ? अथवा इस समय ऐसी निन्दा करने की ही क्या आवश्यकता है ? इससे तो अच्छा यह है कि मैं बड़े भाई को आकाश से पृथ्वी पर गिरकर चूर-चूर होने के पहले ही अपने हाथों पर झेल लूँ। ऐसा सोचकर बाहुबली ने अपने दोनों हाथों को शय्या की तरह विस्तृत कर दिया। ऊँचा हाथ कर खड़े बाहुबली क्षणमात्र सूर्य की ओर देखते हुए तपस्वी की तरह भरत की ओर देखते रहे। मानों वे उड़ना चाह रहे हों। इस प्रकार पगतलियों पर भार दिए खड़े होकर उन्होंने आपतित भरत को कन्दुक की तरह पकड़ लिया। उस समय दोनों ओर की सेना में उत्सर्ग और अपवाद की तरह चक्री को उत्क्षिप्त करने का खेद और उनकी रक्षा का हर्ष संचारित हो गया। ऋषभदेव के पुत्र ने भाई की रक्षा का जो विवेक दिखाया उससे लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। देवताओं ने ऊपर से पुष्प-वृष्टि की। किन्तु वीरव्रत धारी पुरुष को उससे क्या ? तत्काल धुआं और ज्वाला से जैसे अग्नि युक्त होती है उसी प्रकार भरत राजा भी इस घटना से खेद और क्रोध युक्त हो गए।

उस समय लज्जा से अपने मुख कमल को आनत कर भाई का खेद दूर करने के लिए बाहुबली गद्‌गद् स्वर में बोले—हे जगत्पति, हे महावीर्य, हे महाभुज, आप खेद मत करिए। विजयी को भी कभी दूसरा पराजित कर देता है। किन्तु इस कार्य से न मैंने आपको जीता है न मैं विजयी बना हूँ। मैं तो इस घटना को घूनाक्षर न्याय की तरह समझता हूँ। हे भुवनेश्वर, अभी आप एकमात्र वीर हैं, कारण देवताओं द्वारा मथा जाने पर भी समुद्र समुद्र ही रहा, वाष्प नहीं बना। कूद कर गिरे बाघ की तरह आप खड़े क्यों रह गए ? युद्ध के लिए प्रस्तुत होइए। मेरा ये भुजदण्ड मुष्टि प्रस्तुत कर अपने अपवाद को दूर करेगा—ऐसा कहते हुए फणीश्वर सर्प जिसप्रकार फण विस्तारित करता है उसी प्रकार मुष्टि बन्दकर क्रोध से रक्त वर्ण नेत्र किए चक्रवर्ती उसी बाहुबली की ओर दौड़े और हस्ती जैसे स्वदन्त से दरवाजे पर आघात करता है उसी प्रकार उन्होंने बाहुबली की छाती में मुष्ठि प्रहार किया। जिस प्रकार ऊषर भूमि में वर्षा, बधिर व्यक्ति के कान में निन्दा, हिम खण्ड में अग्नि व्यर्थ हो जाती है उसी प्रकार बाहुबली की छाती पर वह मुष्ठि प्रहार भी व्यर्थ हो

गया । फिर भी वे मुझसे असन्तुष्ट हो गए हैं ऐसी आशंका से देवताओं द्वारा परिलक्षित सुनन्दा पुत्र मुष्टि बन्धकर भरत की ओर गए और चक्री की छाती पर उस प्रकार मुष्टि प्रहार किया जिस प्रकार महावत अंकुश से हस्ती के कुम्भ स्थल पर करता है । पर्वत पर वज्र प्रहार की तरह उस प्रहार से घबड़ा कर चक्रवर्ती मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े । पति के पतन पर कुलांगना की तरह भरत के पतन पर पृथ्वी कम्पित होने लगी और भाई के पतन से भाई जैसे पर्वत चलित हो गए ।

अपने भाई को इस प्रकार मूर्छित होकर गिरते देख बाहुबली मन ही मन विचार करने लगे—क्षत्रियों के वीर व्रत के आग्रह से यह एक दम बुरा है कि भाई के प्राण लेने को भी लड़ाई होती है । यदि मेरे ये बड़े भाई जीवित नहीं रहे तो मेरा भी जीवित रहना वृथा है । ऐसा सोचते हुए आँखों के जल से भरत को सिंचित करते हुए बाहुबली अपने उत्तरीय से पंखे की तरह राजा भरत को हवा करने लगे । ठीक ही कहा है, भाई भाई ही होता है ।

कुछ देर पश्चात् नींद से जागृत मनुष्य की तरह चक्रवर्ती की चेतना लौट आयी । वे उठ बैठे । उन्होंने देखा—उनका छोटा भाई बाहुबली दास की तरह उनके सम्मुख खड़ा है । उस समय दोनों का माथा नीचा हो गया । हाय ! महापुरुषों के लिए जय-पराजय दोनों ही लज्जा के विषय होते हैं ।

फिर चक्रवर्ती कुछ पीछे हट गए । कारण युद्ध के लिए इच्छुक व्यक्ति का यही लक्षण होता है । बाहुबली ने सोचा—अब आर्य भरत किस प्रकार का युद्ध करना चाह रहे हैं । कारण स्वाभिमानी पुरुष जब तक जीवित रहते हैं तब तक जरा भी स्वाभिमान छोड़ नहीं सकते । किन्तु भाई की हत्या से मेरा अपवाद होगा और वह शेष पर्यन्त शान्त नहीं होगा । बाहुबली ऐसा सोच ही रहे थे कि चक्रवर्ती ने यमराज-सा दण्ड ग्रहण कर लिया ।

शिखर से जिस प्रकार पर्वत शोभा पाता है, छायापथ से आकाश, उसी प्रकार दण्ड उत्तोलन से चक्रवर्ती शोभित होने लगे । धूमकेतु का भ्रम उत्पन्न करने वाले उस दण्ड को राजा भरत ने एक मुहूर्त्त के लिए आकाश में घुमाया । फिर नवीन सिंह जिस प्रकार अपनी पूँछ को धरती पर पछाड़ता है उसी प्रकार उस दण्ड से बाहुबली के मस्तक पर प्रहार किया । उस दण्ड प्रहार से इतनी जोर आवाज हुई जैसे शब्द सह्याद्रि पर्वत से ज्वार के समय समुद्र लहर के टकराने से होती है । एरण पर्वत पर रक्षित लोहा जैसे घन लोहे के आघात से चूर्ण हो जाता है उसी प्रकार बाहुबली के मस्तक पर रखा मुकुट दण्ड के आघात

से चूर्ण हो गया। वृक्ष को हिलाने पर जैसे वृक्ष से फूल झड़ पड़ते हैं उसी प्रकार मुकुट के रत्न खण्ड जमीन पर झर पड़े। उस प्रहार से क्षणमात्र के लिए बाहुबली के चक्षु मुद्रित हो गए। और उस भयंकर आवाज से लोक समूह भी वैसे ही हो गया अर्थात् सभी के नेत्र बन्द हो गए। तब बाहुबली ने आँखें खोलकर संग्राम के हस्ती की तरह लोहे का उदण्ड दण्ड उत्तोलित किया। उस समय आकाश को यही आशंका हुई कि यह मुझे उत्खनित करेगा। पर्वत के अग्रभाग के विवर में स्थित सर्प की तरह बाहुबली की मुष्टि में वह विशाल दण्ड शोभित होने लगा। दूर से बुलाने के लिए ध्वजा हो ऐसा वह लौह दण्ड बाहुबली घुमाने लगे। धान्यबीज पर लाठी प्रहार की तरह बहली पति ने उस दण्ड से चक्री की छाती पर निर्दयतापूर्वक प्रहार किया। चक्री का कवच खूब सख्त था फिर भी उस आघात से मिट्टी के घड़े की तरह वह चूर-चूर हो गया, कवचहीन चक्री, मेघहीन सूर्य और धूमहीन अग्नि से लगने लगे। सप्तम मदावस्था प्राप्त हाथी की तरह राजा भरत क्षणमात्र के लिए घबड़ा गए। वे कुछ सोच ही नहीं पाए। फिर कुछ देर बाद प्रिय मित्र की तरह अपने बाहुबल की सहायता लिए पुनः दण्ड उत्तोलित कर बाहुबली की ओर दौड़े। दन्त द्वारा ओष्ठ मर्दित कर भृकुटि उत्तोलित कर भयंकर रूपधारी भरतने बड़वानल के आवर्त्त की तरह दण्ड को खूब घुमाया और कल्पान्त काल में मेघ जैसे विद्युत दण्ड से पर्वत पर प्रहार करता है उसी प्रकार बाहुबली के मस्तक पर प्रहार किया। लोहे के ऐरण पर वज्रमणि की तरह उस आघात से बाहुबली घूटने तक जमीन में धँस गए। मानो निज अपराध से भयभीत हो गया है इस प्रकार चक्री का दण्ड वज्रसार की तरह बाहुबली पर प्रहार कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। घुटने तक धँसे हुए बाहुबली पर्वत पर स्थित पर्वत की तरह धरती से निकलने वाले शेष नाग की तरह शोभित होने लगे। मानो बड़े भाई के पराक्रम से चमत्कृत हो गए हैं इस प्रकार उस आघात की वेदना से वे सिर धुनने लगे एवं आत्माराम योगी की तरह क्षण मात्र के लिए कुछ सुन ही नहीं पाए। फिर नदी तट के सूखे कर्दम से जिस प्रकार हस्ती बाहर होता है उसी प्रकार बाहुबली धरती से बाहर निकले और लाक्षारस-सी दृष्टि से अपनी भुजाओं का तिरस्कार कर रहे हों इस भाँति क्रोधियों में अग्रणी अपने भुजदण्डों को देखने लगे। तदुपरान्त तक्षशिलापति बाहुबली तक्षक नाग की तरह दुष्पेक्ष्य दण्ड को एक हाथ में घुमाने लगे। तीव्र वेग से घूमता हुआ वह दण्ड राधावेध में घूमते हुए चक्र की शोभा को धारण करने लगा। प्रलय कालीन समुद्र के आवर्त्त में घूर्णित मत्स्यावतारी विष्णु की तरह घूमते उस दण्ड को देखकर

लोगों की आँखें भी भ्रम में पड़ गयीं। उस सेना के सभी लोगों एवं देवताओं को भी यही शंका होने लगी यदि बाहुबली के हाथ से छूट कर दण्ड उड़ जाए तो वह सूर्य को काँसे के पात्र की तरह तोड़ देगा। चन्द्रमण्डल को भारण्ड पक्षी के अण्डे की तरह चूर्ण कर देगा, नक्षत्रों को आँवले के फल की तरह झाड़ देगा, वैमानिक देवों के विमान को पक्षियों के नीड़ की तरह छिन्न कर देगा, पर्वत शिखर को वल्मीक की तरह फोड़ देगा, बड़े-बड़े वृक्षों को कुंज के तृणों की तरह कुचल देगा और पृथ्वी को कच्ची मिट्टी के गोलक की तरह चूर देगा। इस प्रकार शशंक दृष्टि से परिदृष्ट उस दण्ड से बाहुबली ने चक्री के मस्तक पर प्रहार किया। उस दण्ड के आघात से वज्रघात से विध्वंस दुर्ग की तरह चक्री गले तक धरती में धँस गए। उनके साथ उनके सैनिक भी दुःखित होकर धरती पर गिर पड़े मानों वे याचना कर रहे हों कि हमारे प्रभु को जिस प्रकार धरती में प्रविष्ट करा दिया उसी प्रकार हमको भी करा दीजिए। राहू के द्वारा ग्रसित सूर्य की तरह जब चक्री धरती में प्रविष्ट हुए उस समय आकाश में देवों का और धरती पर मनुष्यों का कोलाहल सुनायी पड़ा। जिनकी आँखें बन्द हो गयी हैं, मुँह कृष्णवर्ण हो गया है ऐसे भरतपति मानों लज्जित हुए हों इस प्रकार कुछ क्षण भूमि में स्थिर रहे। फिर उसी समय इस भाँति पृथ्वी से निकले जिस प्रकार रात्रि समाप्त होने पर सूर्य देदीप्यमान और अधिक तेज होकर बाहर निकलता है।

उस समय चक्री सोचने लगे—जिस प्रकार अन्ध जुआरी प्रत्येक प्रकार से जुए में हार जाता है उसी प्रकार बाहुबली के साथ हर प्रकार के युद्ध में मैं हार गया हूँ। तो क्या गाय जैसे घास बिचाली खाती है किन्तु उससे उत्पन्न दुग्ध दोहन करने वाला उपभोग करता है उसी प्रकार मेरे द्वारा विजित भरत क्षेत्र का उपभोग बाहुबली करेगा। एक म्यान में दो तलवार की तरह भरत क्षेत्र में एक ही समय में दो चक्रवर्ती तो न कभी देखे गए न सुने गए। गधे के सींगों की तरह देवताओं द्वारा इन्द्र एवं राजाओं द्वारा चक्रवर्ती पर जय लाभ इसके पूर्व कभी सुना नहीं गया। तो क्या बाहुबली द्वारा पराजित मैं चक्रवर्ती नहीं बनूँगा? जिसको मैं जीत नहीं सका और न ही संसार में अन्य कोई जीत सका ऐसा बाहुबली ही क्या चक्रवर्ती बनेगा?

चक्रवर्ती जब ऐसा विचार कर रहे थे उसी समय यक्ष राजाओं ने चिन्तामणि रत्न-सा चक्र उनके हाथों में दे दिया। उससे भरत को विश्वास हुआ कि अभी तक वे चक्रवर्ती हैं। तब उन्होंने घूर्णित वायु जिस भाँति

आकाश में धूल को घूर्णित करती है उसी प्रकार आकाश में चक्र घुमाने लगे। किरण जालों से विकट बना वह चक्र ऐसा लग रहा था मानो असमय में कालाग्नि उद्दीप्त हो गयी है। जैसे वह द्वितीय बड़वानल या अकस्मात् उत्पन्न वज्राग्नि या उल्कास्थित विद्युत पुंज अथवा पतन शील सूर्य बिम्ब या विद्युत गोलक है। चक्रवर्ती द्वारा प्रहार के उद्देश्य से घूमते हुए उस चक्र को देखकर मनस्वी बाहुबली मन में विचारने लगे—स्वयं को ऋषभदेव का पुत्र कहने वाले इस राजा भरत को धिक्कार है और उसके क्षात्र धर्म को भी धिक्कार है। मैंने जब दण्ड आयुध लिया तो उन्होंने चक्र आयुध ग्रहण किया। उन्होंने देवों के सम्मुख उत्तम युद्ध की प्रतिज्ञा की थी। किन्तु ऐसा व्यवहार कर उन्होंने बालक की तरह प्रतिज्ञा भंग कर दी है अतः उसे धिक्कार है। तपस्वी जैसे तेजोलेश्या का भय दिखाता है उसी प्रकार क्रुद्ध भरत चक्र दिखाकर जैसे समस्त विश्व को भय दिखाना चाहता है। किन्तु जिस प्रकार स्व भुजदण्डों की शक्ति उन्हें ज्ञात हो गयी है उसी प्रकार चक्र रत्न की शक्ति भी परिज्ञात हो जाएगी। जिस समय शक्तिशाली बाहुबली ऐसा विचार कर रहे थे उसी समय भरत ने पूर्ण शक्ति से उन पर चक्र निक्षेप किया। चक्र को अपनी ओर आते देख तक्षशिलापति विचार करने लगे—तो क्या जीर्ण पात्र की तरह मैं इसे चूर्ण कर दूँ? क्रीड़ा कन्दुक की तरह इस पर प्रहार कर क्या इसे नीचे गिरा दूँ? खेल ही खेल में पत्थर के टुकड़े की तरह क्या मैं इसे आकाश में उछाल दूँ? अथवा शिशुनाल की तरह इसे भूमि में गाड़ दूँ? अथवा चंचल पक्षी शावक की तरह इसे पकड़ लूँ? या बध्य अपराधी की तरह दूर से ही इसका परित्याग कर दूँ? या चक्र में दिए शस्य की तरह इसके अधिष्ठायक देवताओं को दण्ड द्वारा पीस दूँ? या फिर वह सब पीछे होगा पहले इसकी शक्ति से तो अवगत होऊँ। इसी प्रकार जब वे विचार कर रहे थे उसी समय शिष्य आकर जैसे गुरु को प्रदक्षिणा देता है उसी प्रकार चक्र ने बाहुबली को प्रदक्षिणा दी। कारण चक्री का चक्र जब सामान्य स्व-गोत्रीय पर प्रहार नहीं कर सकता तो चरम शरीरी स्व-गोत्रीय पर तो प्रहार करता ही कैसे? इसलिए पक्षी जैसे नीड़ में लौट जाता है, अश्व जैसे अश्वशाला में चला जाता है वैसे ही चक्र राजा भरत के हाथों में लौट आया।

मारने के लिए विषधारी सर्प सा अमोघ अस्त्र एक चक्र ही भरत के पास था। अब ऐसा दूसरा अस्त्र भरत के पास नहीं था। अतः चक्र निक्षेप कर अन्याय करने वाले भरत को और उसके चक्र को मुष्ठि प्रहार से चूर-चूर कर दूँ क्रोधावेग में ऐसा सोचते-सोचते सुनन्दा पुत्र बाहुबली ने यमराज की तरह

भयंकर मुष्टि उत्तोलित कर चक्री की ओर दौड़े। सूँड़ में मुद्गर लिए हाथी की तरह मुष्टि वद्ध दौड़ते हुए बाहुबली भरत के निकट जा खड़े हुए। किन्तु समुद्र जैसे मर्यादित भूमि में ही अवस्थित रहता है उसी प्रकार वे महासत्व कुछ कदम पीछे ही खड़े रहे और सोचने लगे—हाय! इस चक्रवर्ती की तरह राज्य लोभ से बड़े भाई का वध करने को मैं प्रस्तुत हुआ इतदर्थ मैं शिकारी से भी अधिक पापी हूँ। जिसमें पहले ही भ्राता और भ्रातृपुत्र को मार डालना होता है इस प्रकार के शाकिनी मंत्र से राज्य के लिए कौन प्रयास करता है? राजा राज्यश्री प्राप्त करते हैं, इच्छानुरूप उसका उपभोग भी करते हैं किन्तु मदिरा से जैसे कभी सन्तोष नहीं मिलता उसी प्रकार राजाओं को भी प्राप्त राज्य लक्ष्मी से सन्तोष नहीं होता। पूजा आराधना करने पर भी क्षुद्र छिद्र देखकर दुष्ट देवताओं की तरह राज्य लक्ष्मी भी मुहूर्त्तमात्र में विपरीत गामिनी हो जाती है। अमावस्या की रात्रि की तरह वह प्रगाढ़ अन्धकारमयी होती है। यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो पिता क्यों उसका परित्याग करते? मैं उस पिता का पुत्र होकर भी जब यह इतने दिनों बाद जान पाया हूँ तब अन्य उसे इस प्रकार कैसे जान सकते हैं? अतः यह राज्य लक्ष्मी सर्वदा त्याग करने योग्य है। ऐसा सोचते हुए उदार हृदय बाहुबली ने चक्रवर्ती से कहा—हे क्षमानाथ, हे भाई, केवल राज्य के लिए मैं शत्रु की तरह आपको व्यथित कर रहा हूँ, मुझे क्षमा करिए। इस संसार रूपी वृहत् सरोवर में सेवाल जाल की तरह भाई बन्धु और पुत्र कलत्र हैं। अब इस राज्य से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तीन लोक के स्वामी और जगत को अभयदान देने का व्रत धारण करने वाले पिता के पथ पर पांथ की तरह चलूँगा।

ऐसा कहकर साहसी पुरुषों में अग्रणी महासत्ववान बाहुबली ने उत्तोलित मुष्टि से ही अपने मस्तक के केश उखाड़ डाले। उसी समय देवताओं ने साधु-साधु कहकर उनके मस्तक पर पुष्प वृष्टि की। फिर पंच महाव्रत धारण कर वे मन ही मन सोचने लगे—मैं अभी पिता के चरणों में उपस्थित नहीं होऊँगा। कारण यदि अभी गया तो मेरे छोटे भाइयों ने जिन्होंने मुझसे पूर्व ही व्रत ग्रहण किया है और ज्ञानी है उनमें मैं छोटा गिना जाऊँगा। अतः मैं अभी यहीं ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित करूँगा और उससे घाती कर्मों को क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् ही स्वामी की पर्षदा में जाऊँगा।

ऐसा निश्चय कर मनस्वी बाहुबली अपने दोनों हाथ लम्बे कर रत्न प्रतिमा की तरह उसी स्थान पर कायोत्सर्ग ध्यान में अवस्थित हो गए। अपने

भाई की इस स्थिति को देखकर राजा भरत अपने कुकर्म पर विचार कर मानो पृथ्वी में प्रवेश करना चाह रहे हों इस प्रकार माथा नीचा कर खड़े हो गए। तदुपरान्त मानो मूर्त्तिमान शान्त रस हों इस प्रकार अपने भाई को अल्प ऊष्म अश्रु से जैसे अवशेष क्रोध को प्रवाहित कर दिया हो इस प्रकार राजा भरत ने प्रणाम किया। प्रणाम करते समय बाहुबली के पदनख रूपी दर्पण में राजा भरत का प्रतिविम्ब दिखाई पड़ा। देखकर लगा मानो तीव्र उपासना के लिए उन्होंने बहुरूप धारण किया है। तत्पश्चात् भरत बाहुबली का गुण स्तवन और अपवाद रूपी रोग की औषधि समान आत्म-निन्दा करने लगे।

हे भाई, तुम धन्य हो कि मुझपर अनुकम्पा कर तुमने राज्य का ही परित्याग कर दिया। मैं पापी और दुर्मद हूँ जो कि असन्तुष्ट होकर तुम्हें इस प्रकार कष्ट दिया। जो निज शक्ति को नहीं जानते, जो अन्यायी और लोभ के वशवर्ती हैं उनमें मैं धुरन्धर हूँ। जो व्यक्ति इस राज्य को संसार रूपी वृक्ष का बीज नहीं समझते वे अधम हैं। मैं उनसे भी अधिक अधम हूँ। कारण ऐसा जानकर भी मैं राज्य का परित्याग नहीं करता हूँ। तुम्हीं पिता के सच्चे पुत्र हो तभी तो तुमने उनका मार्ग अंगीकार किया है। यदि मैं तुम्हारे जैसा हो सका तभी पिता का वास्तविक पुत्र कहलाने का अधिकारी होऊँगा।

[क्रमशः

जन पत्र-पत्रिकाएं : कहां/क्या

कथालोक ॥ फरवरी १९८४

इस अंक में है 'आचार्य भिक्षु : विविध प्रसंग' (मुनि सुमन कुमार), 'अभय-कुमार का बुद्धि चातुर्य' (महेन्द्र कुमार जैन, दर्शनाचार्य)।

कुशल निर्देश ॥ फरवरी १९८४

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघनजी का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'मूर्त्ति का आलम्बन' (पं०वीरजलाल टोकरसी शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा)।

जिनवाणी ॥ फरवरी १९८४

आचार्य इस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन हस्त-लिखित ग्रन्थ भण्डार [१]' (श्री उ० भा० कोठारी)।

जैन जर्नल ॥ फरवरी १९८४

इस अंक में है 'Bhagavan Mahavira : His Life and Doctrines' (K. C. Lalwani), 'Notion of Declination Implied in the Concept of Mandala (Diurual Circle) in Jaina School of Astronomy' (Sajjan Singh Lishk), 'References to Jaina Pontiffs in the Bijolia Inscription of V. S. 1226' (Krishan Gopal Sharma), 'Acarya Aryabhata' (V. G. Nair), 'More Sculptures from Bhagalpur' (Ajoy Kumar Sinha), 'A Note on the Antiquity of the Adinatha Temple at Pulal' (A Ekambaranathan).

तीर्थंकर ॥ फरवरी १९८४

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'महावीर: कहानी एक महोदर बकरे की' (डा० भार्नाराम), 'तेलकूपी में सराक और ब्राह्मण संस्कृतियों का मिश्र रूप' (युधिष्ठिर माजी, अनु० राजकुमारी बेगानी), 'रुपया बना टकसाल' (कन्हैयालाल सरावगी), 'भारतीय संस्कृति को जैन अवदान' (डा० नेमी चन्द जैन), 'अपरिग्रह इच्छा की अनुपस्थिति' (डा० नेमीचन्द जैन), 'पत्र में लेख' (गणेश ललवानी)।

सम्बोधि ॥ वर्ष १० (२)

इस अंक में है 'Jain Bibliography' (Books and Papers published

in French or by French Scholars from 1906 to 1981—Colette Caillat and Nalini Balbir), 'Why Did Jainisim not Develop the View that Samsara=Nirvana' (Arvind Sharma), 'Jaina Manastambhas at Deogarh' (Tahsildar Singh), 'Some less-known Verses of Siddhasena Divakara' (M. A. Dhaky), 'खजुराहो की जैन मूर्त्तियाँ' (मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी), 'माण्डवगढ़ के महामन्त्री पेथड़शाह ने कितने जिन मन्दिर बनवाये ?' (म० विनयसागर), 'पिशल के प्राकृत व्याकरण में अनुपलब्ध वसुदेव हिण्डी के क्रिया-रूप-३' (के० आर० चन्द्र), 'मेघ विजय को प्राप्त माघ का दाय' (सत्यव्रत), 'क्या सुमति सुन्दर सुरि और सुमतिसाधु सुरि एक हैं ?' (अगर चन्द नाहटा), 'नन्दिचूर्णि अने विशेषावश्यक भाष्यनु पौर्वापर्य' (हर नारायण पाण्ड्या), 'अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण काव्य' (हरिवल्लभ भायाणी), 'श्री पद्मसुन्दर सुरि विरचित पार्श्वनाथ चरित महाकाव्य' (क्षमा मुन्शी)।

Vol. VII No. 11 : Titthayara : March 1984
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001